ISSN: 2456-947X, Vol. I, Issue. III, Dec-2017

अनघ

(An International Journal of Hindi Language, Literature and Culture)

Journal Homepage: http://cphfs.in/research.php

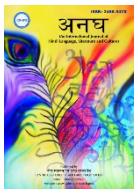

पश्चिमी देशों में हिन्दी

प्रो. गंगा प्रसाद विमल

सेवानिवृत्त प्रोफेसर,

भारतीय भाषा केंद्र,

भाषा साहित्य और संस्कृति अध्ययन संस्थान,

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

पश्चिमी देशों में हिन्दी के प्रचलन की आरंभिक कोशिशें भारत वंशियों के पश्चिम की ओर जाने और संवाद के लिए दो भारत वंशियों के बीच संवाद की ज़रूरत के कारण हुई हैं तथापि भारत विद्या, भारतीय सिनेमा, भारतीय संगीत, भारतीय योग विद्या तथा भारतीय मनीषियों के प्रवचनों में प्रयुक्त संस्कृत-हिन्दी शब्दोचारों के कारण भी हिन्दी वर्णों, ध्वनियों और विन्यासों की अनुगूँजों में हिन्दी भाषा की उपस्थिति पश्चिम की अपनी भाषाओं के प्रयोग के बावजूद सुनाई पड़ी हैं।

पश्चिमी देशों में हिन्दी के प्रति बढ़ते आकर्षण का मुख्य कारण तो भारत को जानने से जुड़ा है किंतु हिन्दी की उपस्थिति के ऐतिहासिक कारणों से भी इसका गहरा संबंध है। स्पष्ट है हिन्दी हिन्दुस्तान या भारत उपमहाद्वीप में बहुतायत से प्रयोग की जाने वाली भाषा है। इस भारत उपमहाद्वीप में दक्षिण एशिया के देश तो स्वाभाविक रूप से गिने जा सकते हैं तथापि ऐतिहासिक कारणों में मुख्य भारत से बाहर जा कर अपना एक आदर्श स्थान बनाने वाले धर्म, बौद्धधर्म ने भी भारत उपमहाद्वीप में भारत के महत्त्व को रेखांकित करने का जो काम किया है वह एक ऐसा ऐतिहासिक प्रतिमान है, जिसने भारत की ओर देखने के लिए दक्षिण एशिया या आशियान राष्ट्रों को नैसर्गिक रूप से प्रेरित किया है। इस आधार से इतर हिन्दी की उपस्थिति को जब हम पश्चिम में आंकते हैं तो हमारे ऐतिहासिक आधारों की आधारभूमियों को नये ढंग से देखना पड़ेगा। इसलिए भी दक्षिण एशिया, ख़ासतौर पर दक्षिण पूर्व एशिया में भारत की उपस्थिति का कालखण्ड उन अंतर्सम्बन्धों की पीठिका में देखना पड़ेगा जिन्हें पश्चिमी इतिहासकार अटकल के रूप में धर्म के प्रभाव में देखने का तर्क प्रस्तुत करते हैं जबकि स्वाभाविक रूप से यह समूचा क्षेत्र भारतीय संस्कृति और भारतीय लोक का ही एक हिस्सा रहा फलतः बहुत गहरे में वहाँ की भाषाओं पर भारत की ऐतिहासिक भाषाओं का व्यापक असर है । उसे संस्कृत प्रभाव कहने से भारत के एक भाषी स्वरूप की तर्कहीन निर्मिति मानना पड़ेगा जबकि भारत और भारत उपमहाद्वीप के सभी क्षेत्र बहुलता में विकसित हुए हैं और इसी बहुलता के बीच संवाद के लिए जिस भाषा का स्वाभाविक रूप से विकास हुआ है वह एक हज़ार वर्षों से प्रचलित हिन्दवी हिन्दी या बोलचाल की हिन्दुस्तानी है।

पश्चिमी देशों में हिन्दी की अनुगूँज भारतीय संस्कृति के एक तत्व के रूप में स्वीकारी गई है। तथापि पश्चिमी संपर्कों के इतिहास को टटोलें तो सिकन्दर महान के पूर्वीय अभियान के ऐतिहासिक प्रमाणों में भाषा संबंधी प्रकरण नहीं के बराबर हैं तथापि यह विश्वास अखंडित है कि दो सभ्यताओं के बीच, दो संस्कृतियों के बीच संवाद अवश्य हुआ होगा और अवश्यमेव भारत की ओर आए स्टेनानायकों ने उस समय के भारत के बारे में अपनी जिज्ञासाएँ शान्त की होंगी। भारतीय भाषाओं को सुनने का यह प्रथम पश्चिमी अनुभव यदि प्रमाणित भी हो तब भी हम उससे किसी ऐसे निष्कर्ष की सीमा के

अंतर्गत नहीं पहुँचते कि पश्चिमी देशों में हिन्दी का प्रवेश का द्वार तभी खुला होगा। तथापि यह विश्वास एक वैज्ञानिक प्रकल्प ही है कि पहली बार भारत भूमि में पर्दापण करने वाले लोग निश्चित ही यहाँ की भाषाओं की ध्वनियों से परिचित हुए होंगे।

अतः पश्चिम में हिन्दी या हिन्दी की पूर्वज भाषाओं की उपस्थिति के कारकों में एक तो पश्चिमी मनुश्य का भारतीय क्षेत्र में आने या ध्वनियों से परिचित होने के क्षण से भारतीय भाषाओं के अस्तित्व से पश्चिमी मस्तिश्क परिचित हुआ होगा।

पश्चिम में हिन्दी की उपस्थिति अनेक कारणों से दिखाई देती है। उसका एक बड़ा कारण भारतीय व्यापारियों का अनेक देशों में आवागमन है। इसी से जुड़ा दूसरा कारण ज्ञान के केन्द्रों से विभिन्न शास्त्रों, सिद्धांतों, जीवन चर्याओं और व्यावहारिक उपयोगी कलाओं का विकास भी है जिसके अंतः सूत्र फिर से व्यापार से जुड़ जाते हैं। तथापि अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में स्वेच्छा से या जबरन या समझौते के अंतर्गत (एग्रीमेंट गिरमिटिया) बड़ी संख्या में भारतवंशियों का एक उपनिवेश से दूसरे उपनिवेश में जाने और फिर परिस्थितियों के दबाव में वहीं बस जाने के कारण अपनी लोक भाषाओं के सहारे अपने लिए एक संपर्क भाषा का संरक्षण एक ऐसा कारण है जिसने डेढ़ दो सौ बरस की बोली को भाषा के रूप में जीवित रखा और फिर अन्यान्य भाषाओं के संयोग से उन क्षेत्रों की अपने ही ढंग की सम्मिश्रित भाषा में भी भारतीय भाषाओं की शब्दव्यंजना, विन्यासगत विषेशता तथा भारतीय भूमि की बहुलता के गुण प्रवेश कर गए जिन्हें उस क्षेत्र में कैसे भारतीय मानस ने भारत की ही तरह अपनी नियति मान कर स्वीकार किया। नियति का यह दबाव एक मूल्य के रूप में परखा जा सकता है।

कारकों की सूची में भारतीयों का व्यापारिक, पर्यटन या अन्य किसी लक्ष्य से प्रेरित होकर भारत से बाहर जाने और भारतीय शब्दों के प्रयोग के कारण भी भारतीय भाषाओं की ध्वनियों से दूसरी भाषाओं के लोग परिचित हुए होंगे। तथापि भारतीय भाषाओं की उपस्थिति भारतीयों के विदेश गमन और विदेश प्रवास से लगातार बढ़ती रही है। पश्चिम में भारतीय बहुल जन-समुदायों के बीच परस्पर संवाद की भाषा हिन्दी स्वाभाविक रूप से इसलिए प्रचलन में आई है क्योंकि वह भारत में विभिन्न भाषायी समुदायों के बीच अन्तर्भाषायी संवाद की भाषा भी है तथा हिन्दी भातीय भाषाओं के अन्तर्मिलन का मुख्य कारण लोक बोलियों के प्रसार के कारण लोक सम्मिश्रण भी है। पश्चिमी देशों में भारतीय जन इसी भारतीय भाषा गुण के कारण हिन्दी का उपयोग नैसर्गिक स्तर पर करते हैं।

एक दो सदियों पूर्व भारतीयों का भारत से बाहर अन्य राष्ट्रों की ओर जाने व वहाँ बसने के कारण भी हिन्दी का पश्चिम में प्रचलन विकास के सोपानों के आरोहण की अलग गाथा प्रस्तुत करती है। बर्तानिया और भारत के परस्पर कुछ सदियों के संबंधों ने भाषायी स्तर पर इंग्लिस्तान में हिन्दी तथा भारत में अंग्रेज़ी शब्दों के भारतीय भाषाओं में प्रवेश का जो रूप निर्धारित किया है उसे भी इस परिप्रेक्ष्य में देखना उचित रहेगा। इसलिए भी कि कुछ सदियों के घने संबंधों ने जहाँ भारत को प्रजातांत्रिक ज्ञान से प्रेरित किया वहीं बर्तानिया में प्राचीन ज्ञान के संदर्भ में भारत विद्या का उदय भी हुआ जिसने यूरोप और अन्य महादेशों में अपनी विकासमान उपस्थिति दर्ज की है। इस परिप्रेक्ष्य में यदि हम पश्चिमी महादेशों में भारतवंशियों की संख्या के अनुपात से उनके योगदान के संदर्भ में ही भाषाओं की प्रयोजनमूलन ज़रूरत का अध्ययन करें तो स्पष्ट होगा कि अनेक प्रकार की हिन्दी पश्चिमी देशों में अपना अस्तित्व स्पष्ट कर रही है।

पश्चिमी में हिन्द महासागर के महत्त्वपूर्ण राष्ट्र मारीशस में हिन्दी का प्रयोग स्वतंत्र रूप से संचार माध्यमों और शिक्षा में होता है। ठीक यही स्थिति प्रशान्त महासागर के फिजी द्वीप में वह कैरिबिमाई देश ट्रिनीडाड टुबैगो व दक्षिण अमेरिका के सूरीनाम, ग्याना जैसे देशों में दिखाई देती है। पश्चिम या भारत से बाहर पूर्वी एशिया में हिन्दी भाषियों की गतिविधियाँ स्पष्ट करती हैं कि भारतेतर क्षेत्रों में हिन्दी का स्वरूप, उनकी अपनी निजी शैलियों में विकसित होकर पनप रहा है तथापि वे मानक भाषा के निकट आने के लिए संघर्शरत हैं।

पश्चिम में हिन्दी प्रकरण में पश्चिमी देशों में हिन्दी प्रकाशनों की नई लहर ध्यान देने योग्य है। एक साथ अनेक पश्चिमी देशों में हिन्दी लेखकों की सक्रियता चैंकाती है। कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, यूनाइटेड किंगडम, जापान, कोरिया, सूरीनाम, मारीशस, फिजी आदि देशों में अब पत्रिकाएँ पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं तथा वे अपने अपने क्षेत्रों के पाठकों को आकर्शित कर हिन्दी के प्रचार का नया इतिहास आरंभ कर रही हैं। पश्चिम में हिन्दी के बढ़ते क़दम अन्य अनेक क्षेत्रों में भाषा की ज़रूरत के लिए भी एक तरह से दिक् का निर्माण कर रही हैं। जापान, कोरिया या एशिया के पूर्वीय राज्यों को छोड़ दें तो भारत के पश्चिम में हिन्दी की उपस्थिति भारत के बढ़ते विकासशील रूप के कारण की उल्लेखनीय हो रही है।

भारत के निकटस्थ प्राचीन क्षेत्र इरान, अरब देश, टर्की आदि देशों के साथ-साथ रूस तथा सोवियत संघ से अलग हुए गणराज्यों में हिन्दी के शैक्षणिक स्वरूप का जो विकास हुआ है उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

इस संदर्भ में याद रखना ज़रूरी है कि पश्चिम में हिन्दी भारत विद्या के प्रकल्प के रूप में एक परंपरा की भी स्थापना करती है। इसलिए स्पष्टतः हिन्दी के दो रूप आरंभिक स्तर पर दिखाई देते हैं। भारत विद्या की संवाहिका संस्कृत विद्वानों की क्षीण स्थिति के कारण हिन्दी विद्वानों की ओर पश्चिम के आकर्षण ने भी हिन्दी की पश्चिमी विद्या संस्थानों में आमद को आदर उपलब्ध कराया और

अकादमिक रूप से हिन्दी को स्वीकृति मिली। इस स्वीकृति के कारण तब के सोवियत देश के अधिसंख्य विश्वविद्यालयों में हिन्दी पठन-पाठन की गति में तीव्रता आई और भारत के स्वाधीन होने के उपरांत भारतीय साहित्य के अनुवाद की नई परंपरा विकसित होने लगी। अकेले सोवियत संघ में भारत की कालजयी कृतियों का अनुवाद होना आरंभ हुआ। सोवियत देश की परंपरा से पूर्व पश्चिमी देशों में संस्कृत के कालजयी ग्रंथों की ओर शाकुन्तलम् के अनुवाद के उपरांत आकर्षण जागा किंतु यह जाग्रति सुसुप्ति के ही खाते में जायेगी क्योंकि जर्मन भाषा में भारत विद्या का दूसरा ही रूप विकसित होने लगा जिसे वेद, उपनिषद, पुराण अध्ययन के अन्तर्गत देखा जा सकता है तथापि पूर्व की पवित्र और गुह्य पुस्तकों के क्रम में मैक्समूलन ने जो अनुवाद किए वे अंग्रेज़ी में संभवतः अधिक लोकप्रिय हुए। भारत विद्या की परिसीमा में भारतीय धर्म-दर्शनों की अनेक शाखाओं का अध्ययन किया जाता है फलतः संस्कृत, पालि, चीनी, जापानी के साथ-साथ छोटे-छोटे बौद्ध धर्मानुयायी देशों की भाषाओं का अध्ययन भी शामिल है। यह बताने की आवष्यकता है क्योंकि आधुनिक भारत, आधुनिक भारत ज्ञान, आधुनिक परंपराओं के लिए प्राच्य भाषाओं का अध्ययन केवल एक ऐतिहासिक आवष्यकता पूर्ण करता है। अन्यथा ज्ञान के क्षेत्र में अंग्रेज़ी के वर्चस्व के कारण ज़्यादातर विषयों का अध्ययन भाषिक अनुकूलता के सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य में किए जाते हैं किंतु आधुनिक भारत का स्वरूप आधुनिक भारतीय भाषाओं और हिन्दी में ही संभव है। फलतः भारत विद्या के आधुनिक प्रकरण के अध्ययन के लिए हिन्दी ही सर्वोत्तम है। इसीलिए पश्चिमी देशों में हिन्दी के प्रति अतिरिक्त रुझान मिलता है।

पश्चिमी देशों में हिन्दी का ध्वज अकादमिक स्तर पर लहराने वाले विद्वानों की एक लंबी सूची है। उनमें भारत वंशी भी हैं और भारतेतर विद्वान भी। यह आश्चर्य का विषय है कि भारत का अध्ययन करने वाली अनेक भारतेतर विद्वानों ने प्राक्ज्ञान का अध्ययन तो किया किंतु प्रचलित हिन्दी के सानिध्य में न रहने के कारण उन्होंने वैदुष्यपरक भाषिक अध्ययन तो किए हैं किंतु वे एक जीवित भाषा के उन रूपों से परिचित नहीं हो पाये जो कालांतर में परिवर्तन की तेज़ लहरों से प्रभावित होकर अपना नया रूपांतरण कर बैठे। तथापि अन्यान्य विद्वानों ने भाषा के अध्ययन की महत्त्वपूर्ण शाखाओं पर काम किया और वे व्याकरण जैसे विषयों की आद्य सामग्री तैयार कर, एक वैज्ञानिक रास्ते के अनुसंधान में लग गए। प्राहा या मास्को, वारसा या ब्रशेल्स में अनेक विद्वानों ने हिन्दी व्याकरण पर लिखना आरंभ किया और अपनी भाषा को माध्यम मानकर वैयाकरणिक अध्ययन प्रस्तुत किए। साथ-ही-साथ हिन्दी में विज्ञ लोगों के लिए भी सामग्री तैयार की। प्रो. दीपत्सित, प्रो. उन्सिफेरोव जैसे रूसी विद्वानों ने विभिन्न पक्षों पर सामग्री तैयार कर भाषा शिक्षण के लिए नई विधियाँ भी सृजित कीं तथा हिन्दी में वैयाकरणिक सामग्री उत्पादित कर नये लेखकों के लिए अद्यतन सामग्री उपलब्ध करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठाए। पश्चिमी देशों का यह योगदान स्वर्णाक्षरो में लिखा जाना चाहिए। इसलिए भी कि हिन्दी को अकादमिक क्षेत्रों में परिपुष्ट करना आवश्यक था।

पश्चिमी देशो में हिन्दी के अकादमिक केन्द्रों पर अलग-अलग केन्द्रों की दृष्टि से विचार करना ज़रूरी है किन्तु हम समेकित रूप में भी उसके मूल आधारों पर विचार कर सकते हैं। महादेशों के रूप में यदि हम एशिया से ही आरंभ करें तो हम पायेंगे कि जापान में हिन्दी शिक्षण का कार्यक्रम बीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही स्वीकार किया जाता है। तथापि स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भारत जापान सांस्कृतिक संबंधों की शुरुआत के दौर में ही भारत में जापानी भाषा का अध्ययन और जापान में हिन्दी के अध्ययन की परंपरा का सूत्रपात हो चुका था। एशियामें जापान का महत्त्व अनेक आधारों पर विष्लेषित किया जाता है उनमें संस्कृति की आधारभूमि संभवतः सबसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है। एशियामें हिन्दी की उपस्थिति के लिए तीन इकाईयों में सर्वेक्षण करना अनिवार्य है। एक भारतीयों की उपस्थिति -- राष्ट्रीय इकाईयों में मलेशिया , सिंगापुर, म्यामार, श्रीलंका में व्यापार रोजगार के लिए गये या आने-जाने वाले भारतीयों के साथ संवाद के साथ अंतर्राष्ट्रीय भाषा अंग्रेज़ी का प्रचलन के अनुसार उपयोग करते होंगे तथापि बाजारों, व्यापारिक प्रतिष्ठानों में वे भाषाई बहुलता के परिप्रेक्ष्य में भाषाई अन्तर्मिलन की जटिलताओं के होते हुए भी हिन्दी में ही अपने संवादी मन की संप्रेशणीयता आसान पाते हैं। इन क्षेत्रों के भारतीय बहुल व्यापारिक केन्द्रों की स्थिति आप देखें तो वहाँ आसानी से व्यापारिक उपयोग के लिए हिन्दी का प्रयोग नैसर्गिक-सी स्थिति है। तब तमिल बोलने वाला व्यक्ति भी अपनी सीमित भाषाई क्षमता होते हुए भी हिन्दी शब्दों का उपयोग करता नज़र आयेगा। इस अधार पर यह सोचने के लिए पर्याप्त तर्क प्रस्तुत हो जाते हैं कि विश्व भाषाओं के साथ नये सहसंबंध स्थापित होने का ही यह प्रमाण है कि पश्चिम में हिन्दी की उपस्थिति है। पश्चिमी बाजारों में भारतीय उत्पाद्य की उपलब्धता ने भी हिन्दी या भारतीय भाषाओं की पदावली का पश्चिम कराया है। इस प्रसंग में भारतीय सिनेमा कदाचित सबसे बड़ा प्रमाण है जिसने भारतीय सिनेमा अर्थात् बम्बईया सिनेमा यानी बालीवुड यानी हिन्दी सिनेमा के रूप में हिन्दी गीतो, हिन्दी संवादों और हिन्दी सूचनाओं को पश्चिम में ज़्यादा लोकप्रिय स्तर पर बढ़ाया है। एक तरह से पश्चिम में हिन्दी की हलचलों की यह पहलक़दमी पश्चिमी में हिन्दी की उपस्थिति को प्रमाणिकता प्रदान करती है।